अनौपचारिक शिक्षा : संकल्पना एवं स्वरूप

□ डॉ० शिवचरण मेनारिया

(प्रधानाध्यापक, राजकीय माडल सेकेण्डरी स्कूल, उदयपुर, राज०)

इमे ये नार्वाङ् त परश्चरन्ति, न ब्राह्मणसो न सुतेकरासः ।
त एते वाचमाभिपद्य पापया-सिरीस्तन्त्र तत्त्वते अप्रजज्ञया ॥
(ऋग्वेद १०. ७१. ६)

"वेदज्ञ ब्राह्मणों एवं परलोकीय देवों के साथ यज्ञादि कर्म नहीं करने वाले व्यक्ति पापाश्रित लौकिक भाषा की शिक्षा के द्वारा अज्ञानीसदृश हलवाहक बनकर कृषि-रूप ताना-बाना ही बुना करते हैं।" शैक्षणिक तारतम्यता का अभाव होने के कारण वेदों में लौकिक भाषा की शिक्षा को पापाश्रित कहा गया है। वर्तमान शिक्षा-जगत् भी उद्देश्य-हीनता के भँवरजाल में फँसा हुआ है। शिक्षणालयों में अध्ययनरत छात्र अपने जीवन के वास्तविक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने में सर्वथा दिग्भ्रमित-सा रहता है तथा अनिश्चितताओं की मृगमरीचिका में भटकता हुआ मस्तिष्क की अपरिपक्वता का भारवाहक बनकर ही सांसारिकता का अनुगामी बनता है। जीवन की समस्याओं से अनभिज्ञ, विक्षिप्तावस्था में नैतिकता के लम्बे पथ पर अग्रसर होता है एवं अतृप्तावस्था में जीवन भर भटकता रहता है तथा कभी-कभी उद्विग्नतावश अनैतिकता का अनुगामी बन जाता है। स्वातन्त्र्योत्तर काल में भी किशोरों की समस्याओं का उचित समाधान नहीं हो पाया है।

आधुनिक युग में विज्ञान एवं तकनीकी का तीव्रगामी विकास हो रहा है। डा० फिलिप हेडलर ने भावी विकास की कल्पना करते हुए कहा है कि आने वाली शताब्दी में विज्ञान एवं तकनीकी की प्रगति के परिणामतः विश्व के ५ प्रतिशत लोग कृषि करेंगे, २० प्रतिशत व्यक्ति उत्पादन कार्य में लगे होंगे तथा ७५ प्रतिशत अत्यधिक कुशलताओं के कार्य में व्यस्त होंगे। इधर मानव का संचित ज्ञान भी प्रत्येक दशाब्दी में दुगुना होता जा रहा है तथा यही क्रम रहा तो यह निश्चित है कि शिक्षा का कैसा भी पाठ्यक्रम हो, वह कुछ ही समय में अपूर्ण और निष्प्रयोजन हो जायेगा।

भारतवर्ष की जनसंख्या ६० करोड़ की सीमा पार कर चुकी है तथा यह आशंका है कि यदि वर्तमान जन्म-दर बनी रही तो सन् २००० ई० तक वह एक सौ करोड़ हो जायगी। जनसंख्या की तीव्रतम वृद्धि ने हमारी गत ३० वर्षों की आर्थिक प्रगति को निष्प्रभावी बना दिया है। विकास क्षेत्रों की विस्तार गति से जनसंख्या विस्तार की गति आगे निकलती जा रही है। विभिन्न प्रयासों से अन्न उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है तो प्रति व्यक्ति अन्न की मात्रा (उपलब्ध मात्रा) भी निराशाजनक सीमा तक घट गयी है। साक्षरता प्रतिशत में सुधार की अपेक्षा निरक्षर जनसंख्या की संख्या अधिक हो गयी है। यही स्थिति मकान आदि आवश्यक जीवनोपयोगी-वस्तुओं तथा सेवाओं की है।

विशाल भारत राष्ट्र के जन-जन को शिक्षित करने अथवा साक्षर बनाने एवं आर्थिक, सामाजिक तथा जन-कल्याण की योजनाओं से भिज्ञ करने हेतु प्रचलित औपचारिक शिक्षा व्यवस्था पर्याप्त नहीं है। दीर्घावधि से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रचलित औपचारिक शिक्षा देश के मात्र ४० प्रतिशत लोगों को साक्षर बना पायी है। देश की ६० प्रतिशत जनता आज भी निरक्षर है तथा अज्ञान के अन्ध महासागर में गोते लगा रही है। देश की प्रचलित शिक्षा प्रणाली देश की आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं है तथा भीतर ही भीतर विशृंखलित है। आज ऐसी शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता है जो राष्ट्र के विकास की आवश्यकताओं से सम्बन्धित हो।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली की सीमाएँ

१. वर्तमान शिक्षा व्यवस्था का एक मुख्य लक्षण यह है कि यह पूरे विद्यालय समय तक विद्यालय में रहने में समर्थ छात्रों को ही प्रवेश देती है। परिणामतः काम-काजी व्यक्ति को संस्थागत शिक्षा का लाभ नहीं मिल पाता है। पत्राचार एवं रात्रि महाविद्यालय भी मात्र तीसरी श्रेणी की शिक्षा उपलब्ध कराते हैं, साथ ही इस प्रणाली से उत्तीर्ण हुए स्नातकों को समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता है। इसी तरह ८ वर्ष से ऊपर की आयु वर्ग के बालकों का बहुत बड़ा प्रतिशत पुनः इस प्रणाली का अंग नहीं बन पाता है। हमारी शिक्षा व्यवस्था बालकों को उनके घरेलू व्यवसाय से हटा लेती है। कुछ वर्षों बाद पुनः कार्यानुभव एवं दस्तकारी जैसे निष्फल उपायों से उन्हें काम की दुनिया से जोड़ने का असफल प्रयास करती है। शिक्षा प्रणाली में अलगाव का तीसरा पक्ष प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च माध्यमिक एवं प्रौढ़ शिक्षा जैसे परस्पर भिन्न क्षेत्रों का अप्राकृतिक विभाजन है। जिनके अध्यापक, कर्मचारी आदि सभी भिन्न-भिन्न हैं।

२. भारत में शिक्षा पर प्रतिवर्ष सोलह सौ करोड़ रुपयों से अधिक व्यय किया जाता है। यह व्यय सुरक्षा व्यय के बाद सबसे अधिक है। प्राथमिक शिक्षा में अपव्यय एवं अवरोधन के परिणामस्वरूप ६० प्र०श० धन व्यर्थ ही चला जाता है। शिक्षा में अपव्यय और अवरोधन का मुख्य कारण इसकी उद्देश्यहीनता है। शिक्षणेतर छात्र नौकरी के लिए इधर-उधर भटकता रहता है, कदाचित ही कोई छात्र पुनः अपने पैतृक व्यवसाय में लौटने की बात सोचता हो।

स्वतंत्र भारत की नव निर्वाचित सरकार ने विकास कार्यक्रमों को सामुदायिक विकास और पंचायत राज की पद्धति से जोड़ने का संकल्प किया था और विकास कार्यक्रम में जनता को भागीदारी देना शैक्षिक प्रक्रिया माना था। फलतः सामुदायिक विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत समाज शिक्षा कार्यक्रम तैयार किया गया किन्तु द्वितीय पंच-वर्षीय योजना के बाद ही समग्र विकास के स्थान पर संकुचित क्षेत्र के उत्पादन कार्यों को महत्त्व दिया जाने लगा तथा सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा पंचायती राज और समाज शिक्षा का महत्त्व कम हो गया। समाज शिक्षा कार्यकर्ताओं के पद समाप्त कर दिये गये और ग्रामसेवकों के पद कृषि कार्यकर्ता के पदों में रूपान्तरित कर दिये गये। जबकि उस समय का एक अत्यन्त सफल कार्यक्रम ग्राम शिक्षा की योजना थी। तदुपरान्त ग्राम शिक्षा संस्थान (रूरल इन्स्टीट्यूट) तथा कृषि महाविद्यालय खोले गये और उनमें सहकारी प्रबन्ध, ग्रामीण सेवाएँ, ग्रामीण स्वच्छता प्रणाली, ग्रामीण अभियान्त्रिकी, ग्रामोद्योग जैसे पाठ्यक्रम सम्मिलित किये गये तथा कृषि महाविद्यालयों को अनुसंधान एवं प्रसार कार्यक्रम सौंपे गये। मगर भारतीय शिक्षा व्यवस्था में इन संस्थाओं की कहानी दुःखान्त बनकर रह गयी है। ये संस्थाएँ अपनी विशेषताओं को बनाये नहीं रख सकीं। ग्रामीण शिक्षा संस्थान सामान्य विश्वविद्यालयों से आबद्ध हो गये और कृषि महाविद्यालय भी (कुछ अपवादों को छोड़कर) कृषि स्नातक (सरकारी नौकरी हेतु) तैयार करने में जुट गये। अपार धन खर्च करने पर भी कोई लाभ नहीं हुआ और यह कार्यक्रम परम्परित शिक्षा की चपेट में आ गया। समाज शिक्षा बोर्ड, कोयला खान कर्मचारी संगठन, अखिल भारतीय श्रमिक शिक्षा समिति तथा कृषकों के लिए क्रियात्मक साक्षरता कार्यक्रम (१९६७-६८) तथा नेहरू केन्द्र प्रारम्भ किये गये किन्तु परिणाम वही ढाक के पात तीन।

हमारे देश का सामान्य शिक्षार्थी अपने दैनिक जीवन की समस्याओं का हल निकाल पाने में समर्थ हो सके और जिसे वह सहज ही जीवन जीते हुए स्वीकार कर सके, ऐसी शिक्षा प्रणाली ही सच्चे माने में उपयोगी कही जा सकती है। देश का बहुसंख्यक वर्ग औपचारिक शिक्षा केन्द्रों में नहीं समा सकता और न ही यह वर्ग अपनी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यस्त दैनिक जीवनचर्या के कारण स्थान-समय सम्बन्धी सीमाओं में बँधने को तैयार है । कदाचित हम अपने प्रयासों से इन्हें औपचारिक शिक्षा की मुख्य धारा में लाने का प्रयत्न भी करें तो भी धनाभाव के कारण हम उनके लिए समुचित व्यवस्था नहीं कर सकेंगे । फलतः हमें किसी नवीन विधा का प्रयोग आवश्यक होगा । अनौपचारिक शिक्षा इसी आवश्यकता की पूर्ति कर सकती है । विकासमान भारत के नागरिकों को आर्थिक एवं सामाजिक जीवन में हो रहे तीव्रतम परिवर्तनों से जूझने के लिए तैयार करना इस शिक्षा का महत्त्वपूर्ण कार्य होगा ।

स्वैच्छिक प्रयास

क्रियाशील साक्षरता को अपना प्रमुख लक्ष्य मानकर कतिपय स्वैच्छिक संस्थाएँ भी प्रौढ़ शिक्षा एवं अनौपचारिक शिक्षा के क्षेत्र में प्रवृत्त हुईं, जिनमें कर्नाटक प्रौढ़ शिक्षा समिति, बम्बई महानगर समाज शिक्षा समिति, बंगोल समाज सेवा संघ तथा राजस्थान की प्रौढ़ शिक्षा समिति , अजमेर, लोक शिक्षण संस्थान, जयपुर, प्रौढ़ शिक्षा समिति, बीकानेर, सेवा मन्दिर, उदयपुर, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर तथा प्रौढ़ शिक्षा समिति आदि मुख्य हैं । इन संस्थाओं ने कृषकों के लिए अल्पकालीन प्रशिक्षण, श्रमिकों के लिए कल्याण कार्यक्रम , कार्यरत बालकों के लिये अनौपचारिक शिक्षा, महिलाओं के लिये घरेलू उद्योग एवं अनौपचारिक शिक्षा के अन्यान्य कार्यक्रम आरम्भ किये हैं ।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं अनौपचारिक शिक्षा

अनौपचारिक शिक्षा को औपचारिक शिक्षा का विकल्प नहीं माना जा सकता, दोनों एक दूसरे की पूरक हैं । उनमें मुख्य रूप से जो अन्तर है वह है उनके स्वरूप, संगठन और दृष्टिकोण में अन्तर । अनौपचारिक शिक्षा का विशेष लक्षण यह है कि इसका स्वरूप और व्यवस्था शिक्षार्थियों की आवश्यकताओं तथा सुविधाओं के अनुरूप ही होती है, फलतः इसमें स्वरूप या संगठन की एकरूपता, कठोरता और नियमबद्धता पर आग्रह नहीं होता । स्पष्ट है कि इससे अनौपचारिक शिक्षा में स्थान और परिस्थितियों के अनुसार विविधता आना स्वाभाविक है । एकरूपता और रूढ़ नियमबद्धता से मुक्त होने के कारण यह लचीलापन लिये हुए स्वायत्तशासी व्यवस्था है।

१९६९ में पर्याप्त विचार विमर्श के पश्चात् अंशकालीन शिक्षा एवं पत्राचार पाठ्यक्रम की कोठारी कमीशन की राय स्वीकृत की गई । तदुपरान्त नवम्बर, ७४ में विद्यालयेतर बालकों के लिये प्रस्ताव पारित किया गया और अनौपचारिक शिक्षा को स्वीकृति प्रदान की गई । प्रान्तीय सरकारों ने केन्द्रीय प्रशासन के अनुरोध पर कतिपय जिलों का चयन करके वहाँ पर प्रौढ़ शिक्षा का कार्यक्रम आरम्भ किया । राजस्थान में यह कार्यक्रम ६ जिलों में आरम्भ किया गया तथा प्रत्येक जिले में १०० केन्द्र प्रारम्भ करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया ।

नवीन राष्ट्रीय नीति के अनुसार अनौपचारिक शिक्षा को प्रयोगात्मक मानने के बजाय शिक्षा का अन्तरंग हिस्सा माना गया है । इसके लिए ३ योजनाओं को पुष्ट माना गया है—

(अ) १५ वर्ष से कम वय-वर्ग के बालकों की शिक्षा में सहायक होगी (शिक्षा में सार्वजनीनता के प्रयत्नों में सहायक)

(ब) १५ से २५ वर्ष के नवयुवकों (ग्रामीण व शहरी) को राष्ट्रीय कार्य-क्रम में सक्रिय भागीदार बनाने का साधन होगी ।

(स) कृषि प्रशिक्षण एवं क्रियाशील साक्षरता में सहयोग ।

अनौपचारिक शिक्षा की प्रासंगिकता

यद्यपि कृषियोग्य भूमि की उपलब्धि चरम पर पहुँच गयी है तथापि प्रति हेक्टर भूमि पर आश्रित लोगों की संख्या बढ़ गई है । अतः विकास के साधनों के संरक्षण एवं संवृद्धि पर भी ध्यान दिया जाना अपेक्षित है । ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने हेतु शिक्षा के सुबद्ध कार्यक्रम आयोजित किये जाना उपयोगी सिद्ध हो सकता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। खादी ग्रामोद्योग एवं दुग्ध उत्पादन जैसी योजनाओं द्वारा किसानों को प्रासंगिक अंशकालीन रोजगार का अवसर प्राप्त हो सकता है तथा भूमि पर पड़ने वाला जनसंख्या का दबाव कम हो सकता है।

देश के सर्वांगीण विकास हेतु यदि अनौपचारिक शिक्षा को सुसंगठित करके प्रारम्भ किया जाय तो यह निर्धनता तथा बेरोजगारी का निदान प्रस्तुत कर सकने में समर्थ हो सकती है। ग्रामीण क्षेत्रों में कृषियोग्य भूमि का पुनर्वितरण, कृषकों की कृषि की नवीन विधाओं से परिचित कराने हेतु प्रशिक्षण, कृषि साधनों की सुरक्षा एवं विकास, पशुपालन एवं ग्रामोद्योग के माध्यम से कृषकों के लिए व्यावसायिक विविधता उत्पन्न की जा सकती है। अनौपचारिक शिक्षा में पर्याप्त लचीलापन होगा जिससे कि वह निर्दिष्ट अंचल या समूह की आवश्यकताओं के प्रसंग से अपने कार्यक्रम को अनुकूलित करती रहेगी।

संकल्पना एवं प्राथमिकताएँ

मानव विकास के क्रम में, प्राचीनकाल में हीं यद्यपि सीखने-सिखाने के लिए विद्यालय नहीं थे; मगर सीखने का मौखिक पाठ्यक्रम अवश्य था जो किसी क्षेत्रविशेष या जातिविशेष के लिये सर्वमान्य नहीं था। जलवायु, कार्य की प्रकृति, पर्यावरण तथा सामाजिक आवश्यकताओं के आधार पर इसका निर्धारण होता था। आज भी मानव को जीवन संघर्ष के लिए तैयार करने वाली शिक्षा विद्यालय व्यवस्था के बाहर ही होती है। बगैर किसी संगठित प्रयास या व्यवस्था के—अभिवृत्तियों के निर्माण, कुशलताएँ प्राप्त करने एवं जानकारी बढ़ाने की प्रक्रिया को हम सहज शिक्षा (इनफारमल एज्यूकेशन) कहते हैं। इसमें परिवार एवं समाज के बुजुर्गों के सचेत प्रयास भी शामिल होते हैं ताकि शिक्षार्थी पर्यावरण के साथ समंजन करते हुए विकसित हो सकें।

फिलिप कुम्बस और मंजूर अहमद ने अनौपचारिक शिक्षा को परिभाषित करते हुए कहा है कि अनौपचारिक शिक्षा परम्परित औपचारिक शिक्षा के ढांचे से बाहर स्वतन्त्र अथवा व्यापक कार्यक्रम के विशिष्ट अंग के रूप में, परिचालित एक व्यवस्थाबद्ध सुसंगठित शिक्षा कार्यक्रम है जिसे किन्हीं निर्दिष्ट शिक्षार्थियों के लिए निर्दिष्ट शैक्षिक प्रयोजनों से चलाया जाता है। अनौपचारिक शिक्षा एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था है जिसके स्वरूप का निश्चय शिक्षार्थी की आवश्यकताओं एवं सुविधाओं के अनुरूप किया जाता है, जो किसी कारणवश शिक्षा से वंचित या काम-धन्धे में लगे लोगों के लिए भी शिक्षा के अवसर जुटाने का प्रयत्न करती है, जो ऐसा व्यावहारिक आधार प्रस्तुत करती है कि शिक्षा जीवन का सहज अंग बन जाए और समाज को सतत शिक्षा की ओर अग्रसर बना सके। किसी भी शिक्षा कार्यक्रम को अनौपचारिक कहलाने के लिए उसमें निम्न शर्तें होना परमावश्यक है—

(१) औपचारिक व्यवस्था से परे हो, जिसमें विद्यालय और कक्षा शिक्षण क्रमबद्ध और श्रेणीबद्ध व्यवस्था के बन्धन न हों।
(२) सचेत भाव से विचारपूर्वक संगठित हो।
(३) समान समूह के लिए आयोजित की गई हो।
(४) समूह की आवश्यकताओं और व्यक्तिगत जरूरतों के अनुसार कार्यक्रम बनाया जाना चाहिए।

ऐसे बालकों या व्यक्तियों के लिए जो किन्हीं कारणों से औपचारिक शिक्षा प्राप्त नहीं कर सके हैं या नहीं कर सकते, अनौपचारिक शिक्षा एक विकल्प का काम करती है। यदि वे अनौपचारिक शिक्षा प्राप्त करके फिर से औपचारिक शिक्षा में प्रवेश ले लें तो यह शिक्षा उनके लिए विकल्प के स्थान पर पूरक का ही कार्य करेगी। वर्तमान में जिस रूप में यह नई व्यवस्था आरम्भ की गई है, उस रूप में यह उन बालक-बालिकाओं की सहायता के लिए है जो कि आर्थिक या अन्य किसी कारण से पूर्णकालिक औपचारिक शिक्षा में प्रवेश नहीं कर सके हैं अथवा प्रवेश करके वापस छोड़ चुके हैं। इस प्रकार के शिक्षा केन्द्रों में अध्ययन करने वाले छात्रों की आयु वर्ग ८ से १४ का होगा।

भारत में निर्धनता और निरक्षरता की समस्या बड़ी विकट है। इनके निराकरण को ध्यान में रखते हुए विकास अभियान में अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रमों को निम्न क्रम से प्राथमिकता देना निश्चित हुआ है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(अ) ८ से १४ आयु वर्ग के कार्यरत अथवा विद्यालय से पढ़ाई छोड़ देने वाले बालकों की शिक्षा की व्यवस्था। इस वर्ग के (६० प्रतिशत अशिक्षित) शिक्षार्थियों में सीखने की रुचि सक्रिय रहती है और एक हल्के से प्रयास द्वारा इन्हें निरक्षरों की श्रेणी में सम्मिलित होने से रोका जा सकता है। इस वर्ग के छात्रों को हिन्दी, गणित, वातावरण का ज्ञान एवं व्यवसाय सम्बन्धी विषयों का ज्ञान कराया जायगा जिससे वे अनौपचारिक शिक्षा पूर्ण करके औपचारिक शिक्षा में प्रवेश लेने में समर्थ हो सकें। इस कार्यक्रम में आवश्यकतानुसार टैस्ट या परीक्षा का प्रावधान भी रहना चाहिए जिससे अवसर मिलने पर शिक्षार्थी औपचारिक शिक्षा धारा में पुनः प्रविष्ट हो सकें।

(ब) १५-२५ आयु वर्ग के किशोर गृहस्थी बसाने लगते हैं और व्यावसायिक तथा पारिवारिक कार्यों का उत्तरदायित्व निभाने लगते हैं। इस वर्ग के शिक्षार्थियों को रचनात्मक प्रयोजनों की ओर अग्रसर किया जा सकता है। इस वर्ग में ५२ प्रतिशत लोग निरक्षर हैं। सामाजिक-आर्थिक विकास कार्यक्रमों के सुसम्पादन के लिए यह वर्ग निर्णायक महत्त्व का है।

(स) कृषकों तथा श्रमजीवियों के लिए शिक्षा कार्यक्रमों को पुनर्संगठित करना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि इन्हीं के ऊपर देश की प्रगति का भार है।

(द) श्रमिकोत्तर गृहणियों के लिए शिक्षा की व्यवस्था की जायगी।

राष्ट्रीय अनुशासन के जीवन दर्शन के लिए अनौपचारिक शिक्षा का केन्द्रीय महत्व है। हमारे सामाजिक-आर्थिक जीवन के अनेक पहलुओं में राष्ट्रीय अनुशासन की नितान्त आवश्यकता है। हमें ऐसे अनुशासन की आवश्यकता है जो हमारी समाजिक-आर्थिक चेतना से उपजे। हमें एक समुचित मूल्य व्यवस्था भी विकसित करनी है। ऐसी मूल्य व्यवस्था जिसमें बुनियादी स्वतन्त्रताओं के साथ-साथ कर्तव्य भावना की जागरूकता हो, बन्धुत्व हो, मानवीयता सद्व्यवहार और आर्थिक व सामाजिक समानता हो।

अनौपचारिक शिक्षा

लक्ष्य

अनौपचारिक शिक्षा अपने शिक्षार्थी के सर्वांगीण विकास का दावा कभी नहीं करती बल्कि वह उनके लिए शिक्षा के अवसर सुलभ कराने की संभावित चेष्टा करती है। अनौपचारिक शिक्षा भारत जैसे विकासशील देश में विकास की प्रक्रियाओं से जुड़ी हुई होती है। फिलिप कुम्बस के शब्दों में 'उचित स्थानों पर समुचित तरीके से क्रियान्वित और अनुपूरक प्रयत्नों से सम्बन्धित अनौपचारिक कार्यक्रम ग्रामीण निर्धनता के निवारण के लिए शक्तिशाली साधन हो सकते हैं।'

इसके मुख्य लक्ष्य निम्न हो सकते हैं—

(१) सक्रिय साक्षरता।

(२) नागरिकों में ग्रामोद्योग के प्रति रुचि उत्पन्न करना ताकि वे अपने अतिरिक्त समय का समुचित प्रयोग कर सकें।

(३) कृषि के उन्नत तरीकों एवं साधनों के संरक्षण से नागरिकों को परिचित कराना।

(४) आदर्श नागरिक के गुणों का विकास करना।

(५) सामाजिक एवं आर्थिक उन्नति के लिए समर्थ बनाना।

(६) श्रमिकोत्तर महिलाओं के लिए शिक्षा (प्रसूति, शिशुपालन, परिवार नियोजन आदि)।

अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रमों से सर्वसामान्य मनुष्य लाभान्वित हो सकते हैं, अतः उन्हें (शिक्षार्थी को) आयोजित कार्यक्रम के साथ समूहित करना पड़ता है या समूहों के अनुसार कार्यक्रम आयोजित करने पड़ते हैं। इसमें प्रवेश हेतु आयु वर्ग तथा औपचारिक शिक्षा में आवश्यक नियमों का कोई बन्धन नहीं होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय वस्तु

अनौपचारिक कार्यक्रमों को अपने निर्दिष्ट समूहों के लिए उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के विचार से विषयवस्तु का चयन एवं निश्चय करना पड़ता है। कुछ विषय-वस्तु विभिन्न समूहों के लिए समान रूप से भी आयोजित की जा सकती है, यथा—अक्षरज्ञान या साक्षरता, संख्याज्ञान, सार्वजनिक स्वास्थ्य, प्रसूति चर्या और शिशु पोषण तथा परिवार नियोजन आदि। किन्तु इस प्रकार के समूहों के लिए जो विषय-वस्तु चुनी जायगी उसमें उनके व्यावसायिक कार्य और आर्थिक पक्ष की जरूरतों के लायक सामग्री पर अवश्य बल दिया जायेगा। इस दृष्टि से एक वर्ग के लिए समुन्नत बीज कार्यक्रम, दूसरे वर्ग के लिए सघन कृषि तकनीकी, तीसरे, चौथे, पांचवें तथा छठे वर्गों के लिए क्रमशः दुग्ध उत्पादन, भेड़पालन, मछलीपालन, मधुमक्खीपालन आदि सहायक व्यवसायों की जानकारी भी दी जा सकती है। इनके साथ ही कतिपय विशेष कार्यक्रमों की भी आवश्यकता रहेगी जिनके द्वारा वे प्रभुतासम्पन्न जातियों की उग्रता का सामना करने का साहस उत्पन्न कर सकें और अपने विकास में आने वाली कठिनाइयों को दूर कर सकें। तात्पर्य यह है कि जिन लोगों पर अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम की विषयवस्तु चुनने का उत्तरदायित्व होगा उन्हें स्वयं को शिक्षार्थी समुदाय में व्याप्त समस्याओं की समाजशास्त्रीय एवं वैचारिक अन्तर्दशाओं के अवबोध में पारंगत होना होगा और विभिन्न विकास अभिकरणों से समन्वय तथा सहयोग भी करना होगा।

केन्द्र-व्यवस्था एवं समय

इस शिक्षा कार्यक्रम के आयोजक किसी स्थान विशेष के प्रति दुराग्रह से पीड़ित नहीं होते हैं। वे चाहें तो विद्यालय भवन का उपयोग अपने कार्यक्रम के आयोजन के लिए कर सकते हैं किन्तु यह किसी भी दशा में अनिवार्य नहीं है। अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रमों का आयोजन अधिकतर तो कार्य-स्थानों पर ही होगा और कार्यगत कुशलताओं के निर्देशन के विचार से वैसा होना भी चाहिए। किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों में शिक्षार्थी का घर भी सीखने का स्थान हो सकता है या कोई ऐसी जगह भी हो सकती है, जिसे शिक्षार्थियों का समुदाय निश्चित करे, जैसे—मन्दिर, मस्जिद, पंचायतघर, गांव का चोरा(चौपाल), खेत या किसी वृक्ष विशेष की छाया। अपने खुलेपन की विशिष्टता के कारण अनौपचारिक शिक्षा की परिस्थितियाँ भी उतनी ही मुक्त और निर्बन्ध होंगी जैसा कि उसका कार्यक्रम होगा।

साथ ही इसमें शिक्षार्थी की सुविधा के अनुसार विभिन्न प्रकार के शिक्षा कार्यक्रम अंशकालिक या पढ़ने वाले की सुविधानुसार चलते हैं। इस अंशकालिक या अपनी सुविधा के दायरे में भी अनेक भिन्नताएँ हो सकती हैं, जैसे कुछ कार्यक्रम दिन में थोड़े समय के लिए चल सकते हैं किन्तु शिक्षार्थी कोई चाहे तो आधे घण्टे के लिए और कोई घण्टे-दो घण्टे के लिए आ सकता है। अन्य स्थितियों में शिक्षण अवकाश में कृषकों के लिए उनकी फुरसत के समय पूर्णकालिक पाठ्यक्रम भी चलाया जा सकता है।

अनौपचारिक शिक्षा में पद्धति, साधन और माध्यम विद्यार्थी समूह की शैक्षणिक आवश्यकताओं और उनकी तत्सम्बन्धी पृष्ठभूमि के आधार पर नियोजित होंगे। उनमें कक्षा शिक्षण हो सकता है तो खेत या कार्यस्थल पर प्रत्यक्ष निदर्शन भी हो सकता है। पत्राचार के माध्यम से कार्य हो सकता है तो निर्देशित स्वाध्याय की स्थिति भी बन सकती है। साक्षरता कार्यक्रम के लिए आयोजकों को भाषा के माध्यम सम्बन्धी निर्णय भी करना होगा। साधन-सामग्री की आवश्यकता को भी झुठलाया नहीं जा सकता। साधन-सामग्री के उत्पादन में जो कठिनाइयाँ उपस्थित हैं उनका अधिक समाधान तो रेडियो, चलचित्र जैसे जन संचार के साधनों से ही हो सकता है किन्तु अन्ततोगत्वा अनौपचारिक शिक्षा में उसकी अपनी साधन-सामग्री की नितान्त महत्ता को अत्युक्ति कहकर नहीं टाला जा सकता।

अनुदेशक

इसके पाठ्यक्रम और पद्धति की अपेक्षाओं से यह ध्वनित होता है कि व्यावसायिक अध्यापक सामान्यतः शिक्षार्थियों की विभिन्न और विविधतापूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकेंगे। इन कार्यक्रमों को वास्तविक अर्थों में व्यावहारिक बनाने के लिए विभिन्न विकास अभिकरणों के कार्यकर्ताओं का सहयोग भी प्राप्त करना होगा और यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी लाभकारी होगा कि शिक्षार्थी समुदाय के शिक्षित नवयुवाओं को अंशकालिक अनुदेशक के रूप में काम देने की संभावनाओं की खोज की जाय। इस प्रकार की व्यवस्था की जाय कि विकास अभिकरणों के कार्यकर्ताओं का उपयोग करना, शिक्षार्थी समूहों में से अनुदेशक चुनना सम्बद्ध जनों में परस्पर ऊँचे दर्जे के समन्वय की अपेक्षा रखती है तथा नियम और कार्य प्रणाली में भी पर्याप्त लचीलेपन की माँग करती है। इसके उपरान्त अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रमों में संलग्न व्यावसायिक अध्यापकों तथा अन्य कर्मचारियों—अनुदेशकों के लिए प्रशिक्षण तथा अभिनवन की भी आवश्यकता होगी। कुछ समय के लिए व्यावसायिक शिक्षक का उपयोग हो सकता है किन्तु सफलता खतरे में पड़ सकती है।

इसमें व्यक्तिशः जाँच की प्रणाली विकसित की जायगी। प्रत्येक शिक्षार्थी को अपनी गति से सीखने और आगे बढ़ने का अवसर दिया जायगा। अनौपचारिक शिक्षा में शिक्षार्थियों को प्रेरित करने में स्तर सीखने की क्षमता को भी दृष्टिगत रखना होगा। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि इसमें औपचारिक शिक्षा के समान परीक्षा आयोजित नहीं होगी। वस्तुतः इसमें किसी विशेष पद्धति पर कोई विशेष जोर नहीं दिया जायगा। मूल्यांकन का मुख्य तरीका प्रेक्षण (Observation) एवं मौखिक परीक्षा के रूप में होगा जिसमें बालक, अध्यापक एवं परिवीक्षक अपना स्व-मूल्यांकन कर सकेंगे।

अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम भारत में अपेक्षाकृत नया है। इसके गर्भ में अनेक संभावनाएँ छिपी हुई हैं। लगन तथा सूझ-बूझ से नये क्षेत्रों में इसके साथ प्रयोग किये जाने चाहिए। इसका आयोजन एवं नियोजन एक जटिल एवं गुरुतर दायित्व का कार्य है। अतः यह आवश्यक है कि जो लोग अनौपचारिक शिक्षा में कार्य करें वे इसके विभिन्न कार्यक्रमों पर गौर करें तथा उन्हें देश की आवश्यकताओं से जोड़ने का प्रयास करें, तभी इसकी सफलता की कामना की जा सकती है।

□

सुवचन

सीसं जहा सरीरस्स जहा मूलं दुमस्स य।
सव्वस्स साहु धम्मस्स तहा झाणं विधीयते।

—इसिभासियाइं २२।१३

जैसे शरीर में मस्तक, तथा वृक्ष के लिए उसका मूल—जड़ महत्त्वपूर्ण है, वैसे ही आत्म-दर्शन के लिए ध्यान महत्त्वपूर्ण है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org